समत्वपूर्ण जीवन

प्रो. (डॉ.) सोहन राज तातेड़,

पूर्व कुलपति सिंघानिया विश्वविद्यालय, राजस्थान

मानव जीवन में समता का बहुत अधिक महत्व है। समता एक ऐसा तत्व हैं जहां पर सभी प्रकार का भेदभाव मिट जाता है। यह जीवन का सर्वोच्च आदर्श है। भारतीय ऋषि मुनियों ने समत्व पूर्ण जीवन जीकर समाज के सामने एक उच्च आदर्श प्रस्तुत किया। ऋषि वह होता है जो समत्वपूर्ण जीवन स्वयं जीता है और दूसरों को भी वैसा जीवन जीने की प्रेरणा देता है। इसीलिए ऋषियों को ज्ञाता और द्रष्टा कहा जाता है। समत्वपूर्ण जीवन का अर्थ है अच्छी सोच, अच्छा विचार, अच्छा चिंतन, रचनात्मक और विधेयात्मक विचार। हम दूसरों के प्रति कैसा सोचते हैं, यह बहुत ही महत्वपूर्ण चीज है। विचार के साथ मानस से जो तरंगे निकलती हैं वह भी व्यक्ति को प्रभावित करती है। हमारे संसार में विचार विनिमय के साधन है मन, वाणी और शरीर। मन के द्वारा आदमी चिंतन करता है, वचन के द्वारा चिंतन को व्यवहार में लाता है और शरीर के द्वारा उसका क्रियान्वयन करता है। जब हम किसी अनजान व्यक्ति को अन्धे को, लूले को, लंगड़े को जिससे की हमारा कोई परिचय नहीं है, आदर के साथ उसको उसका मार्ग दिखलाते हैं, या उसके साथ सद्भावना पूर्वक बात करते हैं तो उसको भी अच्छा लगता है और आत्मीयता प्रतीत होती है। मन, वाणी और शरीर का संयम समता को व्यक्त करता है। समता एक रचनात्मक भावना है। समता में सहनशीलता का गुण होना चाहिए। समता मानव का सबसे बड़ा गुण है। जिस मानव के अंदर यह गुण रहता है वह महान कहलाता है। जो व्यक्ति जितना सहन करके चलता है उसका चरित्र उतना ही ऊंचा होता है। चरित्र वह हीरा है जो टूटकर जुड़ता नहीं। चरित्र निर्माण मानव की स्वाधीन प्रक्रिया है। चरित्र ही ऐसा है जिसे मानव निर्मल बना सकता है। यह उसके अपने अधिकार का विषय है। चरित्र निर्माण के संबंध में पहली आवश्यकता है, व्यक्ति अपनी आत्म–शक्ति को पहचाने। उसके अंदर एक अनंत शक्ति का स्रोत निरंतर प्रवाहित है, इस ध्रुव सत्य को आत्मसात कर लिया जाए। ध्यान धारणा द्वारा अपने–आपको अंतर पुष्ट करने की एक प्रबल आवश्यकता है।

भौतिक सुख–दुःख का मानव–जीवन में कोई स्थान नहीं। मानव की सम्पूर्ण चर्या आध्यात्मिक गुणों से परिपूर्ण होनी चाहिए।

जिसने संयम, समता और सद्भावना के मार्ग को स्वीकार कर लिया है, उसके जीवन में कठोर और मृदु संवेदनों का आना आवश्यक है। संयम के कठोर मार्ग पर चलने वाले साधक के जीवन में परीषहों का आना स्वाभाविक है, क्योंकि साधक का जीवन चारित्र की मर्यादाओं से बधा है। मर्यादाओं के पालन से मानव जीवन की सुरक्षा होती है। मर्यादाओं का पालन करते समय संयममार्ग से च्युत करने वाले कष्ट एवं संकट ही मानव की कसौटी हैं। इसलिये उन कष्टों को समभाव और सद्भावना से सहन कर वह अपने आचार का पालन करे। साधक के लिये परीषह बाधक नहीं साधक होते हैं। मानव में जीवन यापन के दो प्रमुख आयाम होने चाहिए– अहिंसा और कष्ट सहिष्णुता। कष्ट सहने का अर्थ शरीर, इन्द्रिय और मन को पीड़ित करना नहीं, किन्तु अहिंसा आदि धर्मों की आराधना को सुस्थिर बनाये रखना है। मानव जीवन में अनेक बाधायें, प्रतिकूलतायें तथा उपसर्गादि आते ही रहते हैं, इन्हें समतापूर्वक सहना ही परीषह जय कहलाता है। कहा गया है–

क्षमा बड़न को चाहिए,
छोटन को उत्पात।।

अर्थात् बड़े लोगों का यह धर्म है कि यदि छोटे लोग किसी प्रकार का उत्पात भी करे तो उन्हें क्षमा कर दें। समता और सद्भावना के बिना यह संभव नहीं है। अतः समता मानव का सर्वोत्तम गुण है। कष्टों को सहन करना, दुःखों को सहन करना, प्रतिकूल परिस्थितियों को सहन करना और परीषहों को सहन करना कष्ट सहिष्णुता है। सहनशीलता, समभाव, राग–द्वेष से मुक्ति और सभी प्राणियों के साथ आत्मवत दृष्टि रखना सद्गुण है। जब तक मानव में राग–द्वेष रहता है। तब तक वह मोक्ष नहीं प्राप्त कर सकता है।

यह जगत दो दृष्टियों से विचारणीय है– इन्द्रिय जगत, भीतर का जगत। इन्द्रिय जगत बाह्य जगत है, इसे लौकिक जगत कह सकते है। आन्तरिक जगत आध्यात्मिक जगत है, यही भीतर का जगत है। यदि कोई व्यक्ति कष्ट प्रदान करता है तो इसका प्रतिरोध कई प्रकार से किया जा सकता है। लेकिन सबसे अच्छा ढ़ंग सहनशीलता है। यदि प्रतिक्रिया की जाती है तो

लड़ाई–झगड़ा होना निश्चित है। यदि परिस्थितियों को सह लिया जाता है तो टकराव टल जाता है। सहिष्णुता की पहचान यही है कि टकराव टालिए, टकराव विवाद को बढ़ाता है और सहिष्णुता मित्रता पैदा करती है। आज मानव की निगाहों में मानव का पतन हो चुका है। वह व्यक्ति को कीट पतंग से अधिक कुछ भी समझने के लिए तैयार नहीं। आत्मीयता जो मानव की एक विराट चेतना स्पन्दन है, आज लगभग जड़ बन चुकी है। यदि कुछ है तो वह कुछ इने गिने, पारिवारिक व्यक्तियों तक सीमित हो चुका है और उसके स्थान पर भयंकर घृणा का विष भर चुका है। घृणा के तपेदिक से पीड़ित मानव जीवन की जो आज स्थिति है वह किसी से छिपी हुई नहीं है। यह रोग आज सर्वत्र व्याप्त है। घृणा के ही प्रभाव से सत्य और न्याय की सरेआम हत्या होती है। सद्‌गुण की अवहेलना होती है और योग्य व्यक्ति का भी तिरष्कार होता है। समत्वपूर्ण जीवन किसी योगी का ही हो सकता है जो एकान्तवास करता है।